© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2018

''मानव जीवन में यम की उपादेयता''

[1] डा0 विरेन्द्र कुमार, [2]मन्दीप सिहं
[1]विभागाध्यक्ष योग विज्ञान चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।
[2]एम॰ए॰ योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

प्राचीन काल युग के मानव जीवन में सभी तथ्यों तथा तत्वों में सन्तुलन व समानता परस्पर पाई जाती थी। इसलिए वह स्वस्थ, सुखी व संतुष्ट होते थे। जिस प्रकार से वह अपना जीवन जीते थे वह एक प्रकार की नियमित जीवन कला विज्ञान का रूप था। यह सब इस वजह से या इस कारण से एक होता था क्योकि वह अपने सम्पूर्ण जीवन को एक नियमित रूप रेखा के माध्यम से व्यतित करते थे। जो दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या के अनुसार होता था। जिसमें व्यक्ति का जीवन ब्रह्ममुहूर्त से शुरू होकर सांयकाल तक नियमित होता था। व्यक्ति के कार्य के अनुसार या उसके स्वास्थ्य के अनुसार पथ्य आहार निर्धारित होते थे। जैसे कि महर्षि पतंजलि ने अपने कृतिक पुस्तक पातंजल योगसूत्र में बताया है। अष्टांग योग में पहले और दूसरे नियम के अन्तर्गत 'साम्जस्य' स्थापित किया है।

उसी प्रकार 'यम' मनुष्य के जीवन में उसके व्यवहार तथा कार्य को सन्तुलित करता है। तथा मनुष्य को आधुनिक विकास की ओर अग्रसर करता है। अंकुश लगाकर उसे एक सफल व्यक्ति बनने में मदद करता है।

यम :–

यम शब्द की उत्पति 'यम' उपरमें धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ– निवृत करना, नियत्रिंत करना है।

यम हमें सम्यक व्यवहार का बोध कराता है। यम हमारा लोगों के साथ व्यवहार कराता है। उसका ज्ञान प्रदान करता है। वास्तव में यम हमार व्यवहार से सम्बन्धित है। यम के द्वारा हम अपने व्यवहार को परिष्कृत करते हैं। हमारा व्यवहार दूसरों से जुड़ा होता है या हम जो व्यवहार दूसरों के साथ करते हैं उनमें पवित्रता की आवश्यकता होती है जो यम के अन्तर्गत आती है। यम के पालन का ज्ञान बच्चों को छोटी उम्र से ही देना प्रारम्भ करना चाहिए जिससे उनके सामने या उनके द्वारा कोई समस्या न आने पाये। आचाय रजनीश ने यम का अर्थ अन्तर–अनुशासन से लिया है। यम का व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट व विश्व से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

महर्षि शाण्डिल्यापनिषद् व याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार यमों की संख्या 10 बताई गई है।

याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार–

ब्रह्मचर्य, दया, दान सहनशीलता सत्य, अपरिग्रह, अहिंसा, अस्तेय, मधुरता तथा दम से दस यम है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार पांच यम है–

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह।

अहिंसा :–

अहिंसा का अर्थ है– गहन प्रेम, जहां प्रेम की धारा निरन्तर बह रही हो। अहिंसक होने कर अर्थ हितेषी होना, सब की मदद करना, अपनी भी और दूसरों की भी। अहिसा का कियात्मक अर्थ है किसी का दोष न निकालना, कड़वे वचन न बोलना, किसी जीव की हत्या न करना। तन, मन, वचन से किसी को दुखी न करना व करने की सोचना, इसे ही अहिंसा धर्म कहते है।[1]

स्वामी ओमानन्दतीर्थ भी कहते हैं–

शरीर, वाणी या मन से काम, क्रोध,लोभ, मोह, भय की मनोवृतियों के साथ किसी प्राणो को शारीरिक, मानसिक पीड़ा पहुंचाना या अनुमति देना स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से उसका कारण बनना हिंसा है, इससे बचना अहिंसा है।[2]

महर्षि व्यास कहते है :–

सब प्रकार से सब कालों में समस्त भूतों को पीड़ा न देना अहिंसा है।[3]

महर्षि पंतजलि अहिंसा पालन का फल बताते हुए कहते है कि– अहिंसा का आचरण परिपक्व हो जाने पर उस मानव का सब प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है और उसके उपदेश को समझने वाले और उसका आचरण करने वाले कभी अपने आचरण के अनुसार अन्य प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है।[4]

अहिंसा के प्रकार :–

महर्षि पंतजलि ने हिंसा तीन प्रकार की बताई है– कृत–स्वयं करना, कारित–दूसरों को हिंसा के कार्य मे प्रेरित करना और अनुमोदित– किसी द्वारा की गई हिंसा पर प्रसन्नता प्रकट करना।

अहिंसा की उपादेयता :–

अहिंसा कोई एकान्त, शान्त, अरण्य में सेवन की वस्तु नहीं है, यह तो व्यवहार की वस्तु है। यदि अहिंसा को व्यवहार में लाया जाए तो इससे संसार का भला हो सकता है। हमारे जीवन में प्रतिदिन व्यवहार में काम आने वाले अन्य गुण भी है किन्तु अहिंसा जितनी कल्याण्कारिणी फलदायिनीमय सर्वहितकारी वस्तु है ।

स्वामी विवेकानन्द कहते है :– यदि कोई व्यक्ति अहिंसा की चरम अवस्था को प्राप्त कर ले तो उसके सामने जो प्राणी स्वभावतः ही हिंसक है वे भी शांतभाव धारण कर लेते हैं।[5]

अहिंसा एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति (मनुष्य) के व्यक्तित्व को अत्यन्त चमत्कारपूर्ण और विशिष्ट बनाता है। व्यक्ति पर अहिंसा का प्रभाव इतना व्यापक होता है कि उसके आस–पास वायुमण्ड़ल सुवासित हो उठता है। ऋषियों के सामने हिंसक प्राणी वैर–भाव छोड़कर मुनियों के समान हो जाते है।

सत्य :–

'सत्यं यथार्भिवाङ्मनसे।' अर्थात् वाणी और मन की यथार्थत को सत्य कहते हैं। व्यास के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम प्रमाण द्वारा प्राप्त ज्ञान को मन तथा वचन से उसी

रूप में प्रकट करने को सत्य माना है। जिस प्रकार का ज्ञान बोलने से पूर्ण वक्ता के मन में वचनों के द्वारा उत्पन्न है।[7]

स्वामी हरिहरानन्द आरण्य कहते है कि चित तथा वाक्य को तद्रुरूप करने की चेष्टा ही सत्यसाधन है।[8]

सत्य प्रतिष्ठित व्यक्ति की वाणी अमोध होती है अर्थात् उसकी वाणी व्यर्थ नही जाती है।[9]

सत्य की उपादेयता :–

भोज के अनुसार किया करने के बाद फल प्राप्त होता है। लेकिन सत्य का अभ्यास करने वाले योगी को उसकी सत्य की प्रबलता से बिना कर्म किये फल की प्राप्ति होती है।[10]

स्वामी चरणदास के अनुसार सत्य का स्वरूप इस प्रकार है कि बोलने से पहले सोच ले कि मैं जो कुछ भी कहने या बोलने जा रहा हूं वह सत्य ही होना चाहिए सत्य को जैसा देखा वैसा ही बोलना चाहिए।[11]

मनुस्मृति के अनुसार – सत्य प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न बोले तथा प्रिय असत्य न बोले, यह सनातन धर्म है।[12] यदि सत्य और अहिंसा में विरोध हो सत्य बोलने से हिंसा होती हो तो वहां मौन रहना ही अच्छा है। क्योंकि अहिंसा ही यम नियमों का मूल है।

हमें सत्य बोलने का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि मैं जीवन में कभी सत्य का साथ नही छोडूंगा। इससे प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर विश्वास की भावना जाग्रत होती। और इससे समाज उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होगा।

अस्तेय :–

व्यास देव ने अस्तेय को समझाने से पहले स्तेय को समझाया है कि दुसरों के दष्यों को अशास्त्रीय उपायां से ग्रहण करना स्तेय है।[13] अर्थात् किसी की वस्तु पर अधिकार जमा लेना, पराई वस्तु को अपना समझना स्तेय कहलाता है। अगर मन में यह भावना रहे कि मैने किसी की वस्तु ली तो उसको लौटाना चाहिए। ऐसा न करने पर अपने मन मै भी हीनता की भावना रहती है। किसी भी प्रकार का कर्म करने से पहले व्यक्ति उसके विषय में सोचता है उसके बाद कर्म में प्रवृत होता है। इसलिए वाचस्पति मिश्र आदि व्याख्याकारों के मन में दूसरों के धन को ग्रहण करने की अनिच्छा अस्तेय कहलाती है।[14]

अस्तेय की उपादेयता :–

महर्षि पतंजलि के अनुसार अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर साधक को सब रत्नों की प्राप्ति हो जाती है।[15]

हठयोग शाण्डित्योपनिषद के अनुसार– मन, वचन, कर्म से दूसरों की वस्तु के विषय में न सोचना अस्तेय है।[16]

वशिष्ठ संहिता और चरणदास के अष्टांगयोग में भी अस्तेय का वर्णन शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार ही मिलता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– तुम जितना ही प्रकृति से दूर भागोगे, वह उतना ही तुम्हारा अनुसरण करेगी और तुम उसकी जरा भी प्रवाह न करो तो वह तुम्हारी दासी बनकर रहेगी।[17] इसलिए बिना दूसरे की किसी भी वस्तु की इच्छा किए बगैर ही सब कार्य करने चाहिए।

ब्रह्मचय :–

ब्रह्मचर्य शब्द 'ब्रह्म और चर्य' से मिलकर बना है। ब्रह्म का अर्थ 'महान' और चर्य का अर्थ है 'विचरण करना' या ब्रह्म के मार्ग पर चलना। ब्रह्मचर्य का तात्पर्य केवल इन्द्रिय निग्रल ही नहीं बल्कि इसके साथ ही वेदों का अध्ययन भी है। 'ब्रह्म और वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं 'ब्रह्म वेद इतिश्रुते।[18] ब्रह्मचर्य का दूसरा अर्थ है वेद मार्ग पर चलना। स्मृतियों में ब्रह्मचारियों के दो प्रकार का विभाजन देखने को मिलता है। पहला नैष्ठिक और दूसरा उपकुर्वाण। नैष्टिक ब्रह्मचारी जीवन पर्यन्त गुरू के आश्रम में रहता है और वहां पर रहकर ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधना करता है। वह आजीवन ब्रह्मचारी ही रहता है, परन्तु कुर्वाण गुरू के आश्रम में रहकर समुचित विधा प्राप्त कर लेने के बाद गुरू की आज्ञानुसार गृहस्थश्रम में प्रवेश करता है और गृहस्थाश्रम के समस्त धर्मो का पालन करता हुआ मोक्ष मार्ग के लिए अपनी तैयारी करता है। ब्रह्मचारी व्रत और विद्या के आधार पर बांटा जाता है। इस आधार पर ब्रह्मचारी के तीन भेद हो जाते है– विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और विद्याव्रतस्नातक।[19]

यहां ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ न लेकर केवल वीर्यरक्षा ही लेना चाहिए। यहां उपस्थ का अर्थ केवल शिश्न ही नहीं है बल्कि समस्त इन्द्रियों का वाचक है। इन्द्रिय किसी अंग विशेष का नाम नहीं होता बल्कि कर्म करने की शक्ति का नाम इन्द्रिय है। यह शक्ति सम्पूर्ण शरीर में रहती है। अर्थर्ववेद के अनुसार ब्रह्मचर्य रूप तप से देवताओं ने काल को भी जीत लिया है।[20]

ब्रह्मचर्य की उपादेयता :–

योग सूत्रकार महर्षि पतंजलि ने ब्रह्मचर्य का लक्षण बताते हुए कहा है कि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर वीर्य लाभ अर्थात् शक्ति विशेष का लाभ प्राप्त होता है।[21] ब्रह्मचर्य के पालन से बलात्कार सम्बन्धी समस्याओं का भी क्षण होने लगता है।

ब्रह्मचर्य के पालन से शरीर में ओज, तेज, चमक आती है। व्यक्ति स्फूर्तिवान, प्राणवान होता है। ब्रह्मचर्य के पालन के द्वारा ही व्यक्ति समाज के विकास में पूर्ण सहयोग दे सकता है। इसकी कमी में व्यक्ति अनेक बिमारियों से झूंझता रहता है। इसलिए आयुर्वेद में भी कहा गया है कि 'पहला सुख निरोगी काया'। इसलिए ब्रह्मचर्य सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

वेद कहता है– वही वीर्य है, वही ईश्वर है, वही जीवन है और वही सृष्टिकर्ता भी है।[22] वही वीर्य है– वही परमात्मा है और वही अमृत कहलाता है।[23]

एक सफल आचार्य ब्रह्मचारी ही हो सकता है। वही प्रजा पालक राजा बनकर सबको नियन्त्रण में रखता हुआ सर्वाधिष्ठाता होकर राज्य कर सकता है। ब्रह्मचर्य के तप से ही राजा अपने राष्ट की रक्षा करने में समर्थ होता है।[24]

अपरिग्रह :–

परिग्रह का अर्थ आवश्यकता से अधिक साधनों का संग्रह करना, इसके विपरीत जीने के लिए न्यूनतम साधनों को प्राप्त कर संतुष्ट रहना तथा ईश्वर आराधना व साधना के लक्ष्य बनाना अपरिग्रह है।

मनुस्मृति के अनुसार– इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति होने से व्यक्ति निसंदेह दोषी बनता है परन्तु इन्द्रियों को वश में रखने विषयों, विषयों के भोग से वह पूर्ण विरक्त हो जाता है, ऐसे आचरण से अपरिग्रह की सिद्धि होती है।[25]

अपरिग्रह की उपादेयता :–

महर्षि पंतजलि ने अपरिग्रह के बारे में कहा है कि इसकी दृढ़ता होने पर जन्म के बारे में ज्ञान हो जाता है कि वह किस प्रकार का है[26]

व्यास के अनुसार– अपरिग्रह की स्थिति दृढ होने पर साधक भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों काले के बारे में आत्मस्वरूप ज्ञानी हो जाता है।[27]

अपरिग्रह का पालन करने वाला साधक सन्तुष्ट रहता है। उसकी लोभी प्रवृति नहीं होती । वह भोग विलास की सामग्री का आवश्यकता से अधिक संयम नही करता है। साधक की आवश्यक सोमाएं सिमित होनी चाहिए। तभी वह अपने जीवन को ओर बेहतर कर सकता है।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि यम का पालन मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। जिससे व्यक्ति के व्यवहार में दिन–प्रतिदिन बदलाव देखने को मिलता है। यम का पालन प्रत्येक मनुष्य निष्ठापूर्वक कर ले तो उनके व्यवहार और चिन्तन में परिवर्तन हो सकता है और मानव अपने जीवन को पूर्ण सार्थक बना सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. प्रथम अहिंसा ही सुन लीजै। मनकरि काहू दोष न कीजै।।
   कडुवा वचन कठोर न कहिये। जीवघात तनसों नहीं दहिये।।
   तनम न वचन न कर्म लगाबै। यही अहिंसा धर्म कहाबै।।
   भक्तिसागर,अष्टांग योग /27
2. स्वामी ओमानन्द तीर्थ पंतजल योग प्रदीप, पृष्ठ–369
3. तत्रहिंसा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः। यो. द. व्या. भा. 2/3
4. अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। यो. द. 2/35
5. स्वामी विवेकानन्द – राजयोग, पृष्ठ – 172
6. तन्थिमं पठमं ठाणं महावीरेण देसियं। अहिसां दिट्ठा सत्व भू सु संजभा।।
   दश. अ. छ गा. 9–10
7. 'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे' – व्यास भाष्य–2/30
8. स्वामी हरिहरानन्दधारण्य – प. यो. द. सूत्र 2/30, पृष्ठ– 246
9. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् – यो. सू. 2/36
10.कियमाणहि किया सत्याभयासतो भोगिनस्तथा प्रकृष्यते यथा कियायाम कृतायामपि योगीफलमाप्नोति। – भोजवृति 2/36 पृ. 241
11.दूजे सत्य, सत्य ही बोले, हिरदे तोलि वचन मुख खालै। भक्तिसागर (अष्टांग योग)
12.सत्यं ब्रूभात्प्रियं ब्रूयात्सत्यमप्रियम, प्रियं च नानृतं ब्रूयादेषः धर्मः सनातन। मनु. 4/238
13.स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणाम् परतः स्वीकरणम्। तत्प्रतिषेधः पुररस्पृहा रूपमभक्तेयमिति – व्या. भा. 2/30
14. मानसव्यापार पूर्वकत्वाद्धाचाचिक कायिक व्यापारयोंः प्रधान्यात्मनोव्यापार उक्तोऽस्पृहारूपमिति। – तै. वै. 2/30
15. अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'–महर्षि पतंजलि–यो0 सू0 2/37

16. स्वामी विवेकानन्द – पृ0 144
17. ब्रह्मचार्य गुप्तेन्द्रिय स्योपस्थस्य संयम : – व्या0 भा0 2/30
18. ब्रह्मचार्यमुपस्थ संयमः इन्द्रियान्तराणिऽपि तत्र लोलुपानि रक्षणीयानि यतः संयतोपस्थोऽपि – यो0 प्र0 पृ0 39
19. अथर्ववेद – 3/5/19
20. ब्रह्मचार्यप्रतिष्ठायां वीर्य लाभः – महषि र्पं.– यो. सू. 2/38
21. तदेवं शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः। यजुर्वेद 32/1
22. तदेवं शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। कठोप. 2/3/1
23. आचार्यो ब्रह्मचारी प्रजापति। प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रो भणद्धशी।।
ब्रह्मचर्येण तपसा राष्ट्र वि रक्षति। अथर्वेद 11/3/5/16–17
24. मनुस्मृति – 2/93
25. अपरिग्रहस्थैर्य जन्म कथन्तासम्बोधः मं. प. यो0 सू0 2/39
26. महर्षि व्यास – पातंजल योगदर्शन, योगभाज्य सूत्र 2/30